ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 4, April 2016

समाज के प्रति साहित्यकार का दायित्व

डॉ. सरोज

एसोशिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, का. सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या

सारांश

साहित्य का सर्जक साहित्यकार भी सबसे पहले एक मनुष्य अर्थात सामाजिक प्राणी ही हुआ करता है। उस समाज का प्राणी, कि जिसका सहित्य के साथ अन्योन्याश्रिता का संबंध माना गया है। दोनों एक-दूसरे से भाव-विचार-सामग्री और प्रेरणा प्राप्त करके अपने प्रत्यक्ष स्वरूप का निर्माण तो किया करते ही हैं, अपने-आपको सजाया-संवारा भी करते हैं। निर्माण, सृजन और सजाने-संवारने की इस सारी क्रिया-प्रक्रिया का माध्यम हुआ करता है-साहित्यकार। अत: साहित्यकार को दोहरे दायित्वों के निर्वाह के दबावों में जीना एंव सृजन प्रक्रिया में प्रवृत होना पड़ता है। समाज और साहित्य दोनों के प्रति साहित्यकार को समान रूप से अपना दायित्व निर्वाह करना होता है।

साहित्यकार सामान्य नहीं, बल्कि सर्वसामान्य से हटकर एक संवेदनशील सामाजिक प्राणी होता है। हमारे व्यवहार जगह, जीवन और समाज में जो कुछ भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष घटित होता है, यों उसका न्यूनाधिक अनुभव प्रत्येक मानव-प्राणी अवश्य किया करता है। उसके प्रति सामान्य प्रतिक्रिया भी हर मनुष्य प्राय: प्रकट किया करता है। पर उसकी गहन अनुभूति एंव सजग-सक्रिय प्रतिक्रिया किसी युग के साहित्यकार की सजग लेखनी के माध्यम से ही हुआ करती है। इसी कारण वह जीवन-समाज का अगुआ तो बन ही जाता है, उसका उत्तरदायित्व भी बढ़ जाता है। इतिहास गवाह है कि प्रत्येक युग के साहित्यकार ने अपनी सजगता से इस उत्तरदायित्व का निर्वाह भली प्रकार से किया है। वीणा के तार पर उंगली का स्वर्श मात्र ही झंकार पैदा कर दिया करता है और साहित्यकार का हृदय, मन-मस्तिष्क वीणा के सूक्ष्म कोमल तारों से कम संवेदनशील नहीं होते, कि जो समय और घटनाओं की चोटें सहकर भी झंकृत न हों। वह झंकार ही उसकी कला या साहित्य के रूप में अवतरित होकर जातियों, संस्कृतियों और राष्ट्रों की अमर धरोहर बन जाया करती है।

परिचय

साहित्यकार की मानसिकता युग-सापेक्ष तो होती ही है, परंपराओं की उदात्त अनुभूतियों से रंजित भी रहती है। इसी कारण उसका दायित्व अपने समकालीन जीवन का चित्रण करना तो हुआ ही करता है, युग-जीवन को नेतृत्व देकर उसका पथ-प्रदर्शन करना भी तो होता है। वह अपने उज्जवल अतीत से प्रेरणा लेकर, वर्तमान को ध्वनित करते हुए भविष्य के लिए भी मार्ग प्रशस्त कर दिया करता है। इसी कारण साहित्यकार को केवल स्वप्रद्रष्टा ही नहीं, बल्कि भविष्यद्रष्टा भी कहा जाता है। जब कभी भी किसी देश की राष्ट्रीयता स्वतंत्रता और संस्कृति संकट में पड़ी, युग के साहित्यकारों ने अपनी सबल लेखनी उठाकर राष्ट्रों, जातियों और संस्कृतियों में नव प्राणों का संचार किया, इसके उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं। कवियों-लेखकों की वाणी ने इस प्रकार के संकटकाल में नई ऊर्जा, नई प्रेरणा और सजगता का संचार कर नवजागरण के नए मान और मूल्य स्थापित कर दिए। इस प्रकार साहित्यकार का यह गौरवपूर्ण दायित्म हो जाता है कि वह अपनी सभ्यता-संस्कृति, अपने देश और राष्ट्र को उचित मार्ग से भटकने न दे। अपनी वाणी द्वारा हमेशा उसकी धमनियों में नए रक्त का संचार करता रहे। उसकी चेतना को जागृत एंव सक्रिय रखे। उसकी ऊर्जा को चूकने न दे।[1]

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 4, April 2016

युग-युगों में रचे गए इतिहास साक्षी है कि सच्चे साहित्यकार ने अपने इस दायित्व का निर्वाह हर युग में सब प्रकार के लोभ-लालच से दूर रहकर किया है। मध्यकाल का ही उदाहरण ले लीजिए। वह घोर अराजकता और संक्रमण का काल था। धर्म और सत्कर्तव्यों का मार्ग भूलकर लोग निरंतर पथभ्रष्ट हो रहे थे। धर्म के नाम पर ब्रह्चारों, आडंबरों और पाखंडों का बोलबाला हो रहा था। सामाजिकता के नाम पर कुरीतियों-कुप्रथाओं को बढ़ावा दिया जा रहा था। राजनीति के नाम पर आज की तरह ही अराजगता और भ्रष्टाचार पनप रहा था। तब कबीर, नानक और तुलसीदास आदि कवियों ने घोर निराशा और विघटन के विरुद्ध अपनी ओजस्वी वाणी मुखरित करके न केवल भारतीय सभ्यता-संस्कृति, बल्कि समूची मानवतो को विघटनकारी दुष्परिणामों से बचा लिया। उनसे पहले के कवि अपने स्वार्थों से अभिभूत होकर राज्याश्रयों में रह आश्रयदाताओं की झूठी प्रशंसा में अपनी वाणी को अपव्यय पूर्ण अतिशयोक्ति के साथ करते रहे। भक्तिकाल के परवर्ती (रीतिकाल के) कवियों ने भी यही सब किया। परिणामस्वरूप धर्म, समाज और राजनीति आदि प्रत्येक स्तर पर विघटन एंव संघर्ष का दौर चलता रहा। हर मानवीय मूल्य का विघटन होता गया। यहां तक कि देश पराधीन भी हो गया। भक्तिकाल के कवियों को कोई राजा-महाराजा, कोई सम्राट अकबर या अन्य धन-धान्य के लालच में खरीद न सका। परिणामस्वरूप आज भी उनका साहित्य जातीय जीवन को नवप्रेरण देने की क्षमता रखता है। इसके विपरीत वीरगाथा और रीतिकाल का काव्य मात्र ऐतिहासिक अध्ययन की वस्तु बनकर रह गया है। भूषण आदि कुछ कवियों की वाणी को छोडक़र उस सबका ऐतिहासिक अध्ययन का विषय होने के सिवा और कोई महम्व नहीं माना जाता।

आधुनिक काल (संवत 1990) के आरंभ होते ही देश के सजग साहित्यकार एक बार फिर से जीवन, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का तीव्र अहसास करने लगे। न केवल हिंदी भाषा के भरतेंदु, हरिश्चंद्र जैसे सजग कवियों बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों ने भी राष्ट्र की खोई और सोई चेतना को जगाकर स्वतंत्रता-स्वाधीनता के लक्ष्य को पाने का अहसास पूरी शिद्दत के साथ किया। अपने साहित्य में इसी प्रकार की चेतनाओं को ही रूपाकार प्रदान कर जन-जन तक पहुंचाया। उसी का परिणाम है कि आज हम एक स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिक होने का गौरव पा सके हैं। जब देश स्वतंत्रता-संग्राम में जूझ रहा था, तब साहित्यकार भी सभी प्रकार के त्याग का परिचय देकर स्वतंत्रता-प्राप्ति के लक्ष्यों तक पहुंच पाने में जन-जागरण का महान दायित्म निभा रहे थे। तात्पर्‌य यह है कि प्रत्येक युग का वास्तविक एंव जागरुक साहित्यकार जन-जीवन और जन-मार्ग को प्रशस्त करने के लिए आगे-आगे रहा करता है। आज जबकि राष्ट्रीय एंव मानवीय मूल्यों का संकट एक बार फिर से उपस्थित है, साहित्यकार उससे बेखकर रह निष्क्रिय नहीं बैठा हुआ है। बल्कि मानवता की अस्मिता को बचाने के लिए अपनी लेखनी और वाणी के अस्त्र से निरंतर जूझ रहा है।[2]

एक जागरूक और सक्रिय साहित्यकार हमेशा समाज की नाड़ी को पहचानकर उसकी गति-दिशा के उपयुक्त ही उपचार में प्रवृत्त हुआ करता है। आज हमारे देश में अनेक प्रकार की आतंरिक-बाहरी विघटनकारी शक्तियां सक्रिय है। राष्ट्र की सार्वभौम सत्ता और भावात्मक एकता को कई प्रकार की विरोधी चुनौतियों का समाना करना पड़ रहा है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि साहित्यकारों ने हमेशा इस प्रकार की चुनौतियों का उचित उत्तर दिया है, अब भी आगे कदम बढ़ाकर देंगे। अन्यथा उनके अपने अस्तित्व के सामने भी एक मोटा प्रश्नचिन्ह लग जाने का खतरा टाला नहीं जा सकेगा। आने वाला युग उन्हें तथा उनके साहित्य को कूड़ेदान में फेंक देगा।

विचार – विमर्श

साहित्य के अनेक रूपों की रचना करने वाला कलाकार या व्यक्ति को गाहित्यकार कहा जाता है। स्पष्ट है कि साहित्यकार व्यक्ति और इस नाते व्यापक मानव समाज एक अंग हुआ करता है। आम व्यक्ति और साहित्यकार में सामान्यतया अन्तर यह होता है कि कई बातो. जीवन और समाज की स्थितियों, प्रश्नों, समस्याओं और अवस्थाओं को देखकर आम व्यक्ति चुप रह जाया करता है, सहन कर लिया करता या फिर उपेक्षा से एक आध बार सिर झटक कर रह जाता है। इस के विपरीत साहित्यकार

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 4, April 2016

जीवन और समाज की प्रत्येक छोटी बड़ी घटना से प्रभावित होकर, उसके निराकरण का उपाय सोच कर उसे अपनी लेखनी का विषय बना, जीवन-समाज के प्रत्येक विचारवान व्यक्ति के सामने ला दिया करता है ताकि उसके निराकरण का उचित उपाय संभव हो सके। ऐसा करना ही साहित्यकार का उत्तरदायित्व का निर्वाह करना कहा जाता है। हर युग के जागरुक साहित्यकार ने अपने इस दायित्व का उचित निर्वाह अवश्य किया है, विश्व इतिहास इस बात का साक्षी है।

साहित्य को जीवन और समाज का दर्पण बताने वाला साहित्यकार ही हुआ करता है। वह अपने वर्तमान अर्थात् आस-पास के जीवन-समाज के व्यवहारों से प्रेरणा लेकर तो साहित्य का सृजन किया ही करता है, अपनी रचना के माध्यम से अतीत की अच्छाइयाँ उजागर कर, अच्छी और उपयोगी, प्रेरणादायक सास्कृतिक चेतनाएँ ग्रहण कर उस से वर्तमान को सबल, सजीव और उत्साही बनाया करता है। ऐसा करने के पीछे उसका स्पष्ट उद्देश्य यह रहता है कि वह अपने देश, जाति और राष्ट्रीयता के साथ-साथ मानवता के भविष्य को भी उज्ज्वल बनाने के कार्यों में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान प्राप्त कर सके।

जो साहित्यकार ऐसा कर पाने में समर्थ नहीं हो पाता, वह साहित्यकार होने का अपना – अधिकार खो बैठता है। सत्य तो यह है कि ऐसे व्यक्ति को साहित्यकार होने या कहने का अधिकारी ही नहीं माना जाता। रीतिकाल में कहने को हजारों कवि हुए। साहित्य का इतिहास बताने वाली पुस्तकों में शायद उन के नाम भी हैं; पर आम जन तो क्या विशेष जन भी केवल उन्हीं के नाम-काम से परिचित है कि जिन्होंने देश-जाति और सारी मानवता के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह सजग-सतर्क भाव से किया। बाकी अतीत की कब्रों या इतिहास के पन्नों में दब कर रह गए हैं। जो सच्चा साहित्यकार हुआ करता है, यह संभव ही नहीं कि जीवन-समाज संकट से ग्रस्त होते रहें, आदमी और आदमीयत का अपमान होता रहे और वह अपने सुख-दुःख या व्यक्तिवादी प्रेम के राग ही आलापता रहे।[3]

परिणाम

किसी भी युग का वास्तविक साहित्यकार वैसा नहीं कर सकता कि जब रोम जल रहा था, वहाँ का शासक नीरो उस तरफ से बेखबर अपने सुख-चैन या विलास-वासना की बाँसुरी बजा रहा था। नहीं, युग-साहित्यकार द्वारा यह कतई संभव नहीं हुआ करता कि वह जिस जीवन और समाज में रह रहा है, उसकी अनदेखी कर आकाश या क्षितिज की चाँद-तारों भरी चिलमनों के पीछे कुछ ऐसा खोजने-पाने का प्रयास करता रहे कि जो वास्तव में है ही नहीं। आधुनिक काल के तीसरे चरण के यानि छायावादी युग के साहित्य और साहित्यकारों ने जिस सीमा तक ऐसा किया, उस सीमा तक ये लोग मात्र किताबी कर रह गए. एक पुष्प की अभिलाषा' बन कर जन-जीवन तक कभी नहीं पहुँच सके। न ही वे भगवतीचरण वर्मा की भैसा गाड़ी की ची चरमरर को जन-मानस तक पहुँचने से रोक सके। जबकि उनकी मस्ती का आलम' चन्द लोगों के साथ ही चल सका।

कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन-समाज की नब्ज को पहचान कर सच्चा साहित्य हमेशा अपने सामाजिक दायित्वों का उचित निर्वाह करता आया है। वह कभी सहन नहीं कर सका कि 'श्वानों को मिलता दूध' और मानव सन्तानें भूख से बिलखती रहें। नहीं ऐसा सहन न कर पाने के कारण ही उसने (पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने) चुनौती भरे स्वरों में युग के साहित्यकारों को ललकारते हुए कहाः

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,

जिस से उथल-पुथल मच जाए।"

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 4, April 2016

आखिर किस लिए उथल-पुथल मचाना चाहता है कवि। इसी कारण न कि जीवन-समाज में आ गई बुराइयों को मिटा कर, एक सुद-शान्त जीवन-समाज की रचना करके वह अपना उत्तरदायित्व निभा सके। अपने राष्ट्र-ऋण से उऋण हो सके। पितरों ने जो जीवन-समाज उसे दिया है, उसे सब प्रकार से स्वतंत्र, स्वाधीन, उन्नत-विकसित बनाकर अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रख सके। प्राचीन इतिहास को दृष्टिपात करने से यह तथ्य एकदम स्पष्ट हो जाता है कि अपने उत्तरदायित्वों को भली प्रकार से समझ-बूझ कर हर युग का साहित्यकार उनका उचित निर्वाह करता आया है। आज जिसे हिन्दी-साहित्य का आदिकाल (वीरगाथा काल) कहा जाता है. उस समय के कवियों ने राष्ट्रीय संकट को समझ न केवल वीर भाव को जगाने वाला साहित्य ही रचा, अवसर आने पर हाथों में तलवार सम्हाल कर वे लोग राष्ट्रीय आन के मोर्चे पर प्राण-पण की बाजी लगा कर डट भी गए। राजनीति से अलग-थलग रह कर भी भक्ति काल के कदि ने इस प्रकार के साहित्य का सृजन किया की जिसने- राजनीति-समेत जावन-समाज के हर क्षेत्र को अपनी तेजस्विता से प्रभावित किया।[4]

राजा-रक सभी आज मा उाकी महान् परम्पराओं और कार्यों के आगे नतमस्तक होते हैं। कबीर, जायसी, तुलसीदास, सूर आदि भक्ति काल के स्तम्भ साहित्यकारों के दायित्व निर्वाह से भला कौन इन्कार कर सकता है? रीतिकाल के विकास-वासना की दलदल में फसे वातावरण में महाकवि भूषण, सूदन, गोरेलाल और गुरु गोविन्द सिंह राष्ट्रीयता की उदात्त भावना

प्रात, जन-समाज को अपना खोया व्यक्तित्व एवं अधिकार दिलाने के लिए ओजस्वी स्वरों में मुखरित होते रहे। आधुनिक काल का आरम्भ होते ही भारतेंद्रु हरिशकचंद्र और उनकी मित्र मंडली ने जन-जागरण का कार्य कविता के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक विद्याओं के माध्यम से भी किया। इसी परम्परा में आगे चलकर मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी. सुभदाकुमारी चौहान नवीन और दिनकर जैसे महान् राष्ट्र कवि और चिन्तक प्रदान किए कि जिस से राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम को सम्पूर्ण बल मिला। गणेश शंकर विद्यार्थी आदि अन्य अनेक नामों को भी कभी भुलाया जा सकता है। आज का सजग साहित्यकार भी राष्ट्रोत्थान के उत्तरदायित्व को भलीभाँति निभा रहा है।[5,6]

निष्कर्ष

इस सारे विवेचन-विशेषण से स्पष्ट हो जाता है कि सच्चा साहित्यकार चाहे किसी भी युग-क्षेत्र का हो, वह अपने मानवीय, राष्ट्रीय दायित्वों से विमुख न तो कभी रह पाया है. न रह ही सकता है। उसने जन-जागरण और जन-समृद्धि का दायित्व निभाने के लिए बड़े-से-बड़ा त्याग-बलिदान किया है और हमेशा करता रहेगा।[7,8]

संदर्भ

1. 22वाँ मूर्तिदेवी पुरस्कार डॉ॰ रघुवंश को।
2. ↑ पश्चिमी भौतिक संस्कृति का उत्थान और पतन, डॉ॰ रघुवंश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-2004, अंतिम आवरण फ्लैप पर उल्लिखित।
3. ↑ *हमारे रज्जू भैया*, देवेंद्र स्वरूप एवं ब्रजकिशोर शर्मा, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-२०१७ पृष्ठ-१७४.
4. ↑ *"संग्रहीत प्रति". मूल से 23 जुलाई 2016*
5. ↑ हजारीप्रसाद द्विवेदी, *प्रकृति और काव्य* (संस्कृत खण्ड), डॉ॰ रघुवंश, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-अक्टूबर १९५१, पृष्ठ-१,२ ('परिचय')।
6. ↑ कबीर : एक नई दृष्टि, डॉ॰ रघुवंश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण-१९९८, पृष्ठ-७ (भूमिका)।
7. ↑ जायसी : एक नई दृष्टि, डॉ॰ रघुवंश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-१९९३, पृष्ठ-५ (भूमिका)।
8. ↑ पश्चिमी भौतिक संस्कृति का उत्थान और पतन, डॉ॰ रघुवंश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-2004, प्रथम आवरण फ्लैप पर उल्लिखित।